अध्याय 4

संघर्ष एवं परिवर्तन का काल : 11वीं और 12वीं शताब्दी

यह वही भारत है जिसने शताब्दियों के आघातों, सैकड़ों विदेशी आक्रमणों, आचार-विचार और प्रथाओं में हुए असंख्य परिवर्तनों को सहा है। यह वही भूमि है जो अपनी अनंत ऊर्जा और अविनाशी जीवंतता के साथ विश्व की किसी भी शिला से अधिक दृढ़ होकर खड़ी है। इसका जीवन आत्मा के समान है— न आदि है और न अंत; यह अमर है और हम ऐसे ही देश की संतान हैं।

– स्वामी विवेकानंद

चित्र 4.1 — युद्ध की तैयारी करते हुए सैनिकों और हाथियों को दर्शाने वाला उत्कीर्णित भित्ति-शिल्प (लक्ष्मण मंदिर, खजुराहो, मध्य प्रदेश)

महत्त्वपूर्ण प्रश्न ?

1. *11वीं और 12वीं शताब्दी को भारतीय इतिहास में संक्रमण काल क्यों माना जाता है?*
2. *इस कालखंड में कौन-कौन सी नई शक्तियाँ उभरीं? उनकी आर्थिक, सैन्य और प्रशासनिक व्यवस्थाओं की प्रमुख विशेषताएँ क्या थीं?*
3. *इस कालखंड में कला, स्थापत्य, साहित्य, विज्ञान आदि क्षेत्रों में कौन-कौन सी उत्कृष्ट उपलब्धियाँ प्राप्त हुईं?*

0784CH04

not to be published

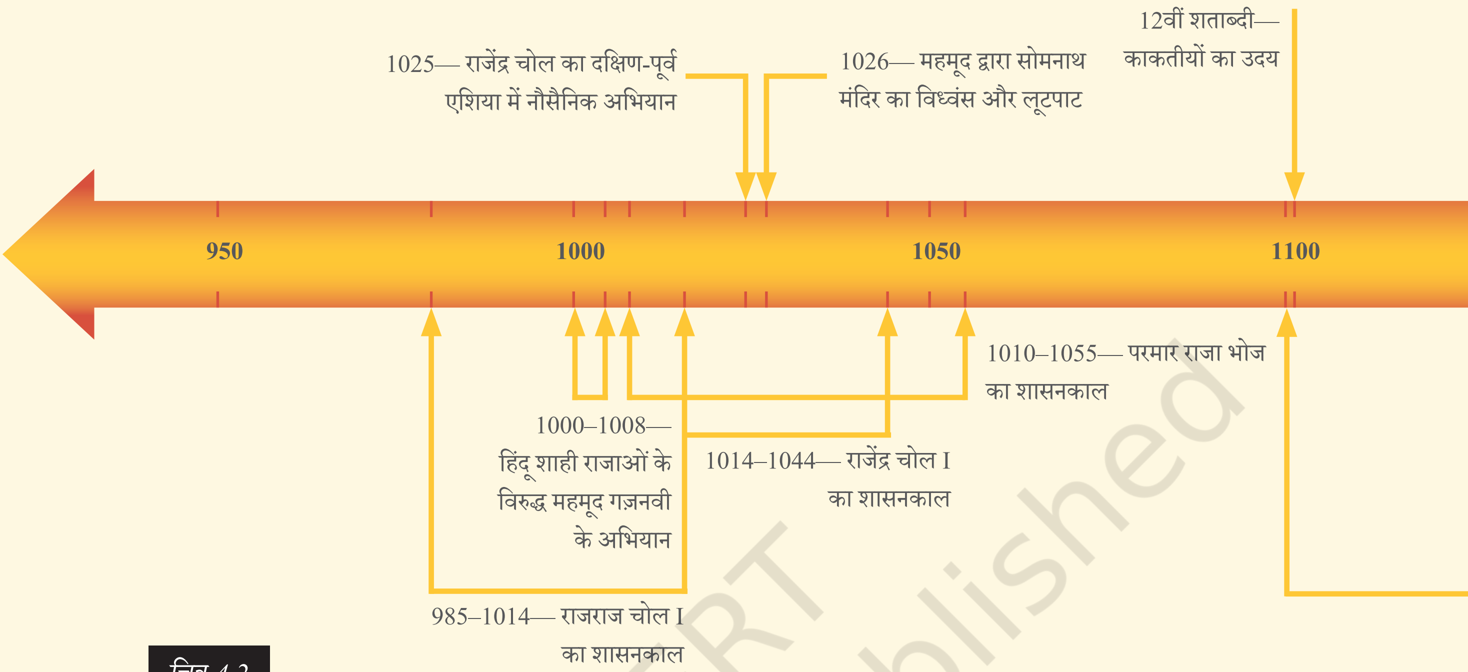

चित्र 4.2

तुर्की
उन व्यक्तियों, भाषाओं और संस्कृतियों को तुर्की कहा जाता है, जो ऐतिहासिक रूप से मध्य एशिया के विस्तृत भूभाग से लेकर तुर्की और साइबेरिया तक फैले हुए क्षेत्र से संबंधित हैं।

पिछले अध्याय में हमने अरबों द्वारा उत्तर भारत पर आक्रमण करने और उस पर प्रभुत्व स्थापित करने के बार-बार किए गए प्रयासों को देखा और यह भी देखा कि अंततः उन आक्रमणों का भारत पर समग्र रूप से बहुत अधिक प्रभाव नहीं पड़ा। किंतु 11वीं और 12वीं शताब्दियाँ एक भिन्न स्थिति को दर्शाती हैं— इस कालखंड में तुर्की शक्तियों द्वारा किए गए आक्रमण देशज राजवंशों के कठोर प्रतिरोध के उपरांत भी उत्तर भारत के भीतर कहीं अधिक गहराई तक पहुँच गए।

इस अध्याय का आरंभ एक आक्रमण से होता है और इसका समापन भी एक अन्य आक्रमण के साथ होता है। इन आक्रमणों के परिणामस्वरूप हुए युद्धों और विनाश का यहाँ संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इसी कालखंड में अनेक भारतीय शासक भी उत्कर्ष पर पहुँचे। उन्होंने अनेक अवसरों पर आक्रमणकारियों का सफलतापूर्वक सामना किया (जब वे परस्पर संघर्षरत नहीं थे), समुद्री अभियानों का संचालन किया, अद्भुत स्मारकों का निर्माण कराया तथा गौरवशाली भारत के प्रभाव को विदेशों तक विस्तारित किया। यह कालखंड अनेक कवियों, दार्शनिकों, संतों और वैज्ञानिकों का भी रहा, जिनकी कृतियाँ वर्तमान में भी हमें आलोकित करती हैं।

इस अध्याय में हम ऐसी ही कुछ प्रमुख घटनाओं, व्यक्तित्वों और उपलब्धियों का संक्षिप्त अध्ययन करेंगे।

© NCERT not to be republished

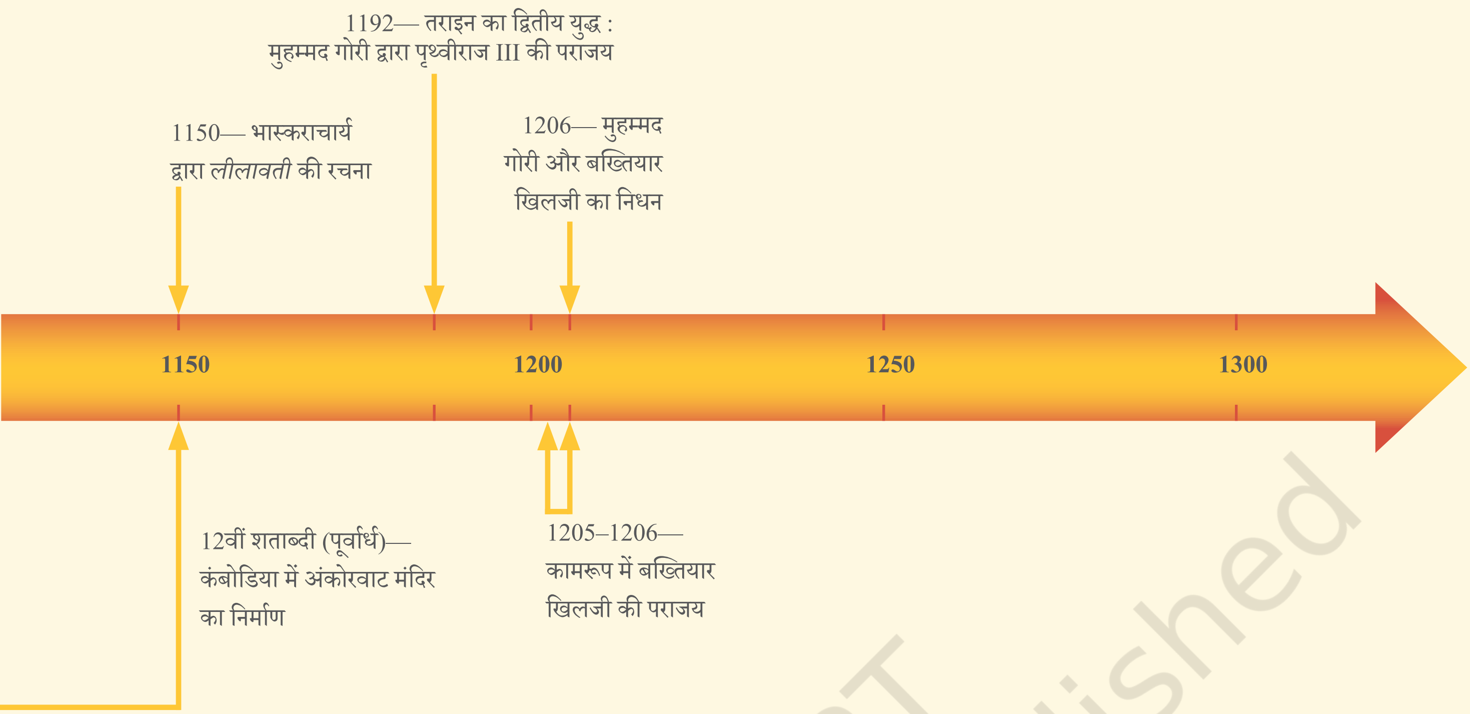

आइए विचार करें

सावधानी सूचक संकेत— कक्षा 8 में आप 'इतिहास के अंधकारमय कालखंडों पर एक टिप्पणी' पढ़ेंगे। संक्षेप में कहें तो उसमें यह विवरण दिया गया है कि इतिहास में प्रायः शांति, सुशासन या सृजनात्मकता की अपेक्षा युद्ध, विजय और विनाश का अधिक उल्लेख किया गया है तथा विश्वभर में इतिहासकार अनेक बार ऐसे अंधकारमय कालखंडों पर ध्यान देने से संकोच करते रहे हैं। हमारा दृष्टिकोण यह है कि ऐसे कालखंडों का अध्ययन करना और उनका विश्लेषण करना अधिक उपयुक्त रहेगा ताकि यह समझा जा सके कि ऐसी घटनाएँ किस कारण हुईं और आशा है कि भविष्य में उनकी पुनरावृत्ति को रोका जा सके। इसके अतिरिक्त हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि अतीत की घटनाओं को न तो मिटाया जा सकता है और न ही अस्वीकार किया जा सकता है, आज के समय में किसी को उनके लिए उत्तरदायी ठहराना अनुचित होगा।

गज़नवी आक्रमण

9वीं और 10वीं शताब्दी में वर्तमान अफगानिस्तान और उत्तरी पाकिस्तान के क्षेत्रों में अनेक राज्य परस्पर संघर्षरत थे। इन दोनों क्षेत्रों से लेकर पंजाब तक एक शक्तिशाली **हिंदू शाही**

© NCERT not to be republished

राजवंश का शासन था। इन हिंदू शाही राजाओं ने अनेक अन्य भारतीय शासकों के सहयोग से कई आक्रमण के प्रयासों का सफलतापूर्वक प्रतिरोध किया। हिंदू शाही राजाओं के लिए यह प्रतिरोध अत्यंत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ क्योंकि उनके नियंत्रण में खैबर दर्रा था, जो हिंदुकुश पर्वतमाला का एक प्रमुख पर्वतीय मार्ग है (चित्र 4.3 और 4.4 देखें)। भारत के इतिहास में अनेक आक्रमणकारियों ने इसी मार्ग से उपमहाद्वीप में प्रवेश किया। यह दर्रा लगभग 2500 वर्षों तक एक प्रमुख व्यापारिक मार्ग भी रहा जो उपमहाद्वीप को मध्य एशिया से तथा उससे आगे के क्षेत्रों से जोड़ता था। यह प्रमुख व्यापारिक मार्ग बौद्ध विद्वानों और भिक्षुओं के आवागमन का भी प्रमुख मार्ग रहा है।

आइए पता लगाएँ

खैबर दर्रे के रेखाचित्र (चित्र 4.3) का अवलोकन कीजिए। यह रेखाचित्र किस प्रकार की भू-आकृति को दर्शाता है?

- सिंधु के मैदानों तक पहुँचने का प्रयत्न कर रही सेना को यह मार्ग कौन-से लाभ प्रदान करता होगा? और साथ ही कौन-से संकट भी उत्पन्न होते होंगे?
- शताब्दियों तक इस मार्ग से गुजरने वाले व्यापारिक कारवाँ के संदर्भ में भी यही प्रश्न कीजिए— लाभ और संकट दोनों पर विचार कीजिए।

चित्र 4.3 — 1847 के आस-पास एक ब्रिटिश सैन्य अधिकारी द्वारा चित्रित खैबर दर्रा

© NCERT not to be republished

अंततः एक तुर्की शक्ति— गज़नवी वंश— ने एक प्रतिद्वंद्वी मुस्लिम राज्य को पराजित करने के पश्चात उस समय **जयपाल** द्वारा शासित शाही वंश को परास्त कर दिया। जैसा कि नाम से स्पष्ट है कि गज़नवियों की राजधानी गज़ना थी, जो वर्तमान अफगानिस्तान में स्थित गज़नी है। 11वीं शताब्दी के प्रथम दशक में उसके शासक महमूद (जिसे प्रायः 'गज़नी का महमूद' कहा जाता है) ने इस अंतिम विजय को संपन्न किया। उसने पहले जयपाल को पराजित किया तथा 1008 में एक दीर्घकालीन युद्ध के पश्चात जयपाल के पुत्र **आनंदपाल** को भी परास्त किया। यद्यपि आनंदपाल को उत्तर भारत के अनेक शासकों का समर्थन प्राप्त था। यह युद्ध उत्तरी पंजाब में लड़ा गया था और इसके परिणामस्वरूप महमूद को सिंधु के मैदानों तथा उससे आगे तक सरलता से पहुँच प्राप्त हो गई।

आइए विचार करें

इस अध्याय में आगे हम फारसी विद्वान अल-बरुनी से मिलेंगे जो महमूद के कुछ अभियानों में उसके साथ थे। अपने भारत के संस्मरणों में उन्होंने लिखा— "हिंदू शाही वंश अब पूर्णतः समाप्त हो चुका है और उस कुल का कोई भी अंश शेष नहीं बचा। हमें यह कहना होगा कि अपनी समस्त भव्यता के साथ वे सदैव उत्तम और न्यायपूर्ण कार्य करने की तीव्र अभिलाषा रखते थे; वे उदात्त भावना और गरिमामय आचरण वाले पुरुष थे।"

महमूद के साथ में रहने वाले फारसी विद्वान अल-बरुनी की इस टिप्पणी से हम कौन-से निष्कर्ष निकाल सकते हैं?

इसे अनदेखा न करें

महमूद ने 'सुल्तान' की उपाधि धारण की। यह शब्द अरबी मूल का है, जिसका अर्थ 'अधिकार' या 'शक्ति' होता है; मुस्लिम जगत में यह संप्रभु शासक या राजा के लिए प्रयुक्त होता था। कक्षा 8 में हम ऐसे सुल्तानों के विषय में पढ़ेंगे, जिन्होंने भारत में अपने राज्य या सल्तनत को स्थापित किया, जिनमें दिल्ली सल्तनत सबसे प्रमुख थी।

महमूद ने भारत में कुल 17 अभियान किए। प्रत्येक अभियान के पश्चात वह अपार लूट के साथ गज़नी लौटता था। यद्यपि उसे मध्य भारत के चंदेलों सहित अन्य शासकों के प्रबल प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। कुछ अन्य अवसरों पर महमूद पराजय के निकट भी पहुँचा, तथापि उसकी विशाल सेना की तीव्र गतिशीलता और घुड़सवार धनुर्धारियों के साहसी आक्रमण अंततः निर्णायक सिद्ध हुए।

© NCERT not to be republished

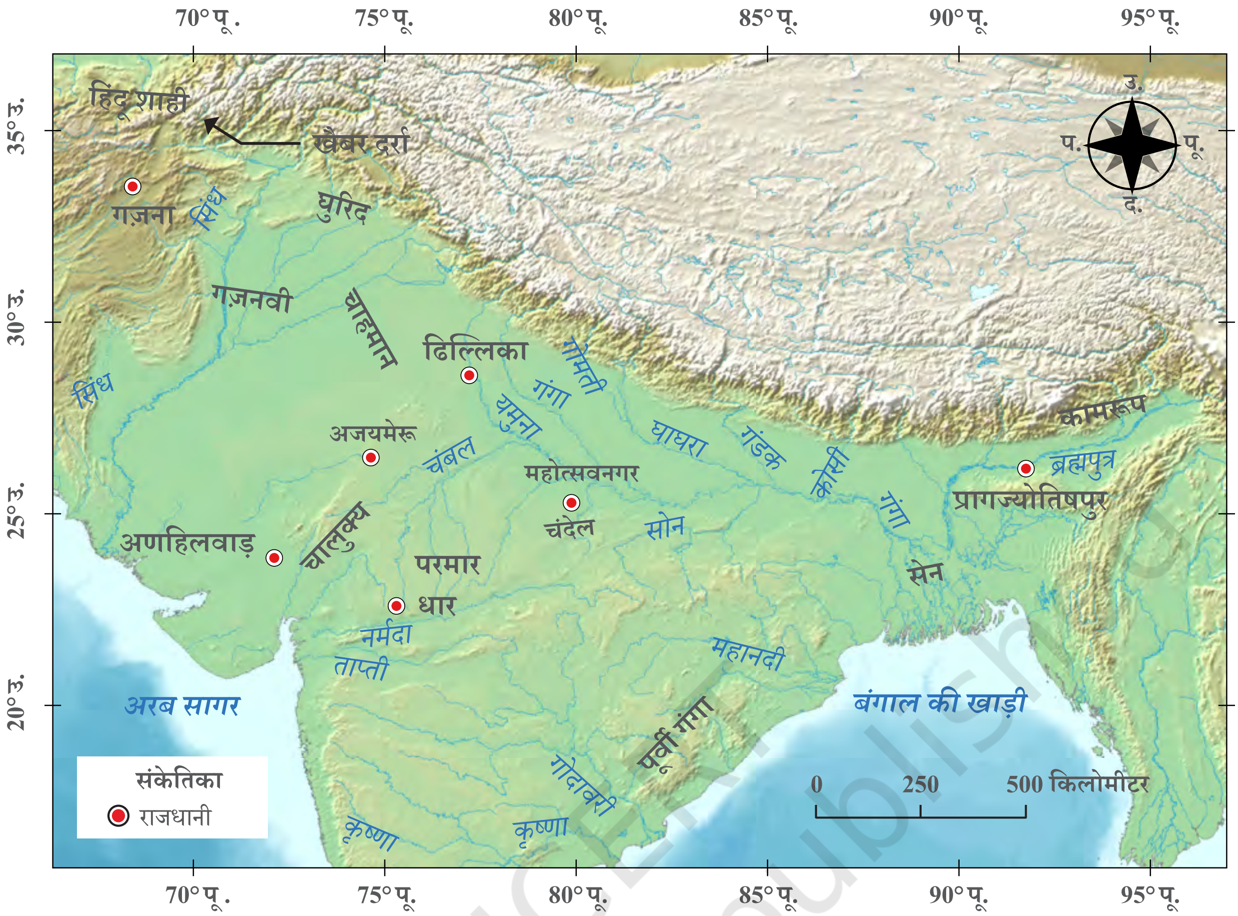

चित्र 4.4 — 11वीं और 12वीं शताब्दी में उत्तरी और मध्य भारत के कुछ राजवंशों का चित्रण

1018 में जब महमूद वर्तमान पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मथुरा पहुँचा, तो उसने इसे अत्यंत समृद्ध नगर पाया जहाँ एक भव्य मंदिर स्थित था। महमूद के अभियानों का वृत्तांत लिखने वाले दरबारी इतिहासकार अल-उत्बी का कहना था कि उस मंदिर के "सौंदर्य एवं अलंकरण" का वर्णन "समस्त लेखकों की लेखन-शक्ति और सभी चित्रकारों की लेखनी" भी नहीं कर सकती। महमूद उस मंदिर को ध्वस्त कर उसके खजाने को लूट कर कन्नौज की ओर बढ़ा, जहाँ उसने प्रतिहार वंश के अंतिम शासकों में से एक को आकस्मिक रूप से पराजित किया तथा अनेक मंदिरों को लूटा और ध्वस्त किया। कुछ वर्षों के पश्चात एक अन्य अभियान महमूद को गुजरात और सोमनाथ (वर्तमान सौराष्ट्र) तक ले गया। उस समय यह एक समृद्ध समुद्री नगर था। स्थानीय जनसमुदाय के प्रबल प्रतिरोध और अपनी सेना की भारी क्षति होने पर भी कुछ दिनों के संघर्ष के पश्चात महमूद को अंत में जीत मिली। तत्पश्चात उसने सोमनाथ शिव मंदिर को ध्वस्त किया और उसके विशाल खजाने को लूट लिया।

चित्र 4.5 — वर्तमान के अंब शरीफ (उत्तरी पाकिस्तान) में हिंदू शाही शासकों के शासनकाल में निर्मित एक मंदिर परिसर के अवशेष

आइए पता लगाएँ

उत्तरवर्ती शताब्दियों में सोमनाथ मंदिर का अनेक बार पुनर्निर्माण और अनेक बार विध्वंस भी हुआ। वर्तमान सोमनाथ मंदिर का निर्माण वर्ष 1950 में हुआ तथा इसके अगले वर्ष तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद द्वारा उसका उद्घाटन किया गया। इसके निर्माण हेतु संपूर्ण धनराशि सार्वजनिक दान से एकत्र करने का निर्णय लिया गया। आपके अनुसार ऐसा निर्णय क्यों लिया गया?

1030 में 58 वर्ष की आयु में गज़नी में महमूद की मृत्यु हुई। महमूद की मृत्यु के पश्चात लगभग इसी समय उसके भतीजे सालार मसूद ने गंगा-यमुना क्षेत्र पर आक्रमण किया। मौखिक परंपराओं तथा 17वीं शताब्दी के एक मुस्लिम इतिहास-ग्रंथ के अनुसार, जब वह बहराइच (वर्तमान उत्तर प्रदेश) पहुँचा, तब वहाँ के स्थानीय शासक सुहेलदेव ने आक्रमण का सफलतापूर्वक प्रतिरोध किया और युद्ध में सालार मसूद का अंत हो गया।

महमूद ने अभियानों में केवल विध्वंस और लूट ही नहीं की अपितु उसने असंख्य भारतीय नागरिकों का नरसंहार किया तथा बच्चों सहित अनेक लोगों को बंदी बनाकर मध्य एशिया के दास-बाजारों में बेचने के लिए ले गया। उसके जीवन-वृत्तकारों ने उसे एक शक्तिशाली किंतु क्रूर और निष्ठुर सेनानायक के रूप में चित्रित किया है, जो न केवल 'काफ़िरों' (अर्थात हिंदू या बौद्ध या जैन) की हत्या अथवा उनके दासत्व में रुचि रखता था, अपितु इस्लाम के प्रतिद्वंद्वी संप्रदायों के अनुयायियों की हत्या करने में भी तनिक संकोच नहीं करता था।

© NCERT not to be republished

अल-बरुनी

चित्र 4.6 — पूर्व सोवियत संघ द्वारा 1973 में अल-बरुनी की स्मृति में जारी एक डाक टिकट। (उस समय उज्बेकिस्तान सोवियत संघ का भाग था।)

अबु रेहान अल-बरुनी, ख्वारिज्म (वर्तमान उज्बेकिस्तान) निवासी एक फारसी विद्वान थे। वे एक गणितज्ञ, खगोलविद, भूगोलवेत्ता, इतिहासकार तथा भाषाविद थे। उन्होंने व्यापक यात्राएँ कीं और अपने समय में ज्ञात प्रायः प्रत्येक ज्ञान के विषय पर अरबी तथा फारसी भाषाओं में विशद लेखन किया।

लगभग 1017 में अल-बरुनी, महमूद गज़नी के साथ भारत-अभियान में आए। उन्होंने संस्कृत भाषा सीखी, भारतीय ग्रंथों का अध्ययन किया और भारतीय विद्वानों से चर्चाएँ भी कीं। इसके परिणामस्वरूप उन्होंने भारतीय धर्म, दर्शन, साहित्य, भूगोल तथा विज्ञान पर एक विश्वकोशात्मक सर्वेक्षण प्रस्तुत किया, जिसमें उन्होंने भारतीय बौद्धिक उपलब्धियों का यथासंभव विवेचन किया और प्रायः उनकी तुलना यूनानी तथा इस्लामी परंपराओं से की। अल-बरुनी ने गणित और खगोलशास्त्र के क्षेत्र में आर्यभट, वराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त आदि के ग्रंथों से उपलब्ध सामग्री का संकलन किया। एक अन्य ग्रंथ में उन्होंने पतंजलि के *योगसूत्र*— योग की उन्नत संकल्पनाओं और विधियों पर आधारित एक शास्त्रीय ग्रंथ— का अरबी भाषा में अनुवाद किया।

इसी के साथ अल-बरुनी ने महमूद के सैन्य अभियानों के भारत की वैज्ञानिक परंपराओं पर पड़े प्रभाव का भी उल्लेख किया। उन्होंने लिखा— "महमूद ने देश की समृद्धि को पूर्णतः नष्ट कर दिया और वहाँ ऐसे विजय अभियान किए कि हिंदू सभी दिशाओं में बिखरे धूलकणों के समान हो गए... यही कारण है कि भारतीय विज्ञान उन प्रदेशों से विस्मृत हो गए जिन्हें हमने जीता है और उन स्थानों की ओर चले गए जहाँ तक अभी हमारी पहुँच नहीं है— जैसे कश्मीर, वाराणसी और अन्य क्षेत्र।"

भास्कराचार्य

उत्तर भारत में कुछ समय पश्चात वैज्ञानिक ज्ञान के सृजन और प्रसारण में अवश्य ही कुछ ह्रास आया, किंतु अन्य क्षेत्रों में यह परंपरा निरंतर समृद्ध होती रही। संभवतः वर्तमान महाराष्ट्र क्षेत्र में सा.सं. 1114 में भास्कर तृतीय का जन्म हुआ, जो भास्कराचार्य के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं। वे भारत के महानतम गणितज्ञों और खगोलविदों में से एक थे।

उनके परिवार में भी अनेक विद्वान और खगोलविद थे। उनके द्वारा संस्कृत भाषा में रचित ग्रंथों में सर्वाधिक प्रसिद्ध *लीलावती* है। इसमें रोचक पहेलियों और प्रश्नों के माध्यम से प्रारंभिक गणित सिखाया गया है; इनका *बीजगणित* नामक ग्रंथ उन्नत बीजगणित से संबंधित है, तथा *सिद्धांतशिरोमणि* (अर्थात 'गणितीय खगोलशास्त्र के ग्रंथों का शिरोमणि') में जटिल खगोलीय गणनाओं का विवेचन किया गया है। बाद के अनेक विद्वानों ने इन ग्रंथों पर टीकाएँ लिखीं और मुगल-काल में इनमें से अनेक टीकाओं का फारसी भाषा में अनुवाद भी हुआ। परिणामस्वरूप भारत में ही नहीं अपितु भारत के बाहर भी उनका प्रभाव दीर्घकाल तक बना रहा। यूरोप को भास्कराचार्य की कुछ मौलिक विधियों को पुनः खोजने में अनेक शताब्दियाँ लगीं।

वैज्ञानिक प्रतिभा के साथ-साथ भास्कराचार्य में काव्यात्मक अभिव्यक्ति की भी प्रतिभा थी, जिसके कारण उनके ग्रंथ विद्वानों और विद्यार्थियों दोनों के लिए रुचिकर बन गए। उनके लेखन में स्पष्ट व्याख्याएँ, उदाहरण, निरूपण और प्रमाण प्रचुर मात्रा में हैं। इसी कारण भास्कराचार्य के ग्रंथ शताब्दियों तक विद्यार्थियों के प्रिय अध्ययन-ग्रंथ बने रहे। क्या आपको स्मरण है कि ऐसी ही उदाहरणात्मक समस्याएँ आपने कक्षा 7 की गणित की पुस्तकों में भी देखी थीं? *लीलावती* से एक उदाहरण प्रस्तुत है— देखिए, क्या आप इसका समाधान ढूँढ़ सकते हैं?

हाथियों के एक समूह में से आधे और उस आधे के एक-तिहाई हाथी एक गुफा में चले गए। समूह का एक-छठा भाग और उस एक-छठे का एक-सातवाँ भाग नदी से जल पी रहा था। एक-आठवाँ भाग और उस एक-आठवें का एक-नवमांश कमल-पुष्पों से भरे सरोवर में क्रीडा कर रहा था और हाथियों का राजा तीन हथिनियों का नेतृत्व कर रहा था। बताइए, उस समूह में कुल कितने हाथी थे?

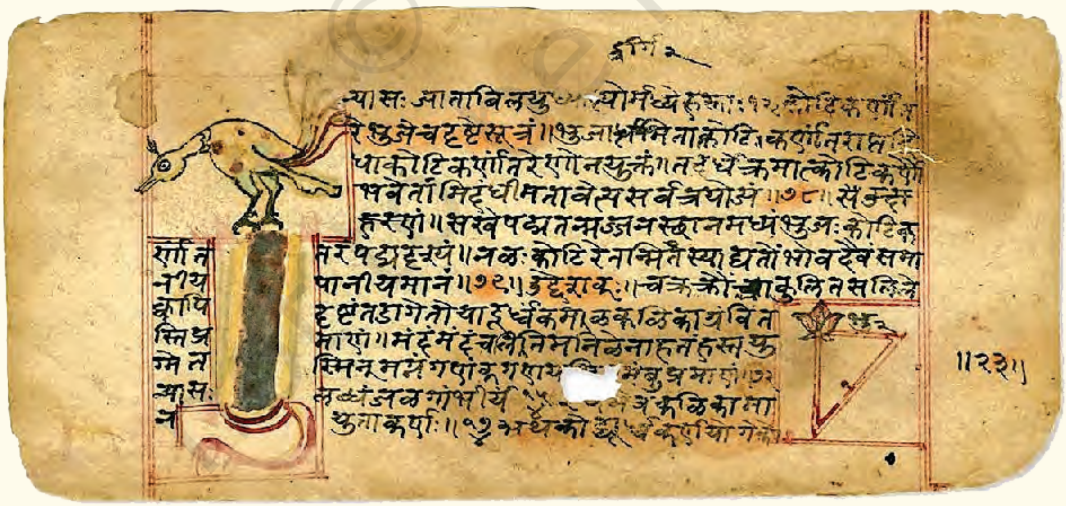

चित्र 4.7 — 17वीं शताब्दी की एक पांडुलिपि। इसमें लीलावती से एक और गणितीय समस्या चित्रित है एवं इस पर एक स्तंभ के शीर्ष पर मयूर को और नीचे एक सर्प को दर्शाया गया है।

© NCERT not to be republished

चित्र 4.8 — इस चित्र में एक भारतीय शासक को बंदी के रूप में महमूद के सम्मुख प्रस्तुत किया गया है (15 वीं शताब्दी के ऐतिहासिक फारसी ग्रंथ की पांडुलिपि)

चूँकि महमूद ने पंजाब से आगे भारत में कोई स्थायी आधार स्थापित करने का प्रयत्न नहीं किया, इसलिए इतिहासकारों ने उसके द्वारा किए गए इन अत्यंत विनाशकारी अभियानों के उद्देश्यों पर विचार-विमर्श किया है। प्रायः यह मत व्यक्त किया गया है कि भारत में मंदिरों के विध्वंस का मुख्य कारण लूट-पाट था। यह सत्य भी है कि बड़े मंदिरों में भक्तों की शताब्दियों की अर्पित भेंटों से अपार धन संचित हो जाता था और इस कारण वे लूट के प्रमुख लक्ष्य बनते थे।

परंतु यह भी उतना ही सत्य है कि महमूद संसार के गैर-मुस्लिम क्षेत्रों में इस्लाम के अपने मत का प्रसार करने के लिए भी उत्सुक था, जैसा कि समकालीन साक्ष्यों से स्पष्ट होता है। उदाहरणार्थ, उसके दरबारी इतिहासकार अल-उत्बी ने लिखा— "जहाँ-जहाँ महमूद गया, वहाँ-वहाँ उसने देश को लूटा और पूरी तरह से उजाड़ दिया, यहाँ तक कि उसका सर्वनाश कर दिया। उसने वहाँ के सभी भवनों को खोदकर गिरा दिया और जला डाला। उसने काफिरों की हत्या की तथा उनके बच्चों और पशुओं को लूटकर ले गया। उसने (अन्य) अनेक प्रदेशों पर अधिकार किया और उनके मंदिरों तथा पवित्र भवनों को नष्ट कर उनके स्थान पर मस्जिदें बनवाईं, जिससे इस्लाम को बढ़ावा मिल सके।" आइए, पुनः अल-बरुनी का उल्लेख भी करें। सोमनाथ मंदिर में पूजित शिवलिंग की

© NCERT not to be republished

उत्पत्ति का वर्णन करने के पश्चात उन्होंने लिखा— "शहजादे महमूद ने उस शिवलिंग को ध्वस्त कर दिया। उसने आदेश दिया कि उसके ऊपरी भाग को तोड़ दिया जाए और शिवलिंग के शेष भाग को गज़नी में उसके घर ले जाया जाए। शिवलिंग का ऊपरी भाग गज़नी की मस्जिद के दरवाजे के सामने पड़ा है। लोग इस पर अपने पैरों को रगड़ते हैं, ताकि उनके पैरों पर लगी गंदगी और कीचड़ साफ हो जाए।"

चित्र 4.9 — लाहौर से महमूद द्वारा जारी की गई एक मुद्रा। इसके एक ओर अरबी में और दूसरी ओर संस्कृत में लिखा है। इसमें इस्लाम और महमूद की 'नृपति' अर्थात राजा के रूप में प्रशंसा की गई है।

पूर्वी भारत

11वीं शताब्दी में जहाँ एक ओर उत्तरी भारत गज़नवी आक्रमणों का मुख्य आघात सह रहा था, वहीं दूसरी ओर पूर्वी भारत की स्थिति इससे अत्यंत भिन्न थी। पाल वंश के पतन के पश्चात **सेन वंश** (चित्र 4.4) बंगाल के अधिकांश भाग में प्रमुख शक्ति के रूप में उभरा। इनकी राजधानी नादिया में थी (वर्तमान में नादिया जिले की सीमा बांग्लादेश से मिलती है)। पड़ोसी राज्यों कामरूप (असम) तथा कलिंग (लगभग वर्तमान उड़ीसा) के साथ उनके संबंध कभी सौहार्दपूर्ण, तो कभी संघर्षपूर्ण प्रतीत होते हैं। जहाँ उनके पूर्ववर्ती पाल शासक बौद्ध संस्थाओं के संरक्षक थे, वहीं सेनवंशी शासकों ने हिंदू विचारधारा और साहित्य को प्रोत्साहन दिया। उनकी सभा में जयदेव जैसे कवियों को आश्रय प्राप्त हुआ। जयदेव ने कृष्ण और राधा की कथा पर आधारित प्रसिद्ध *गीतगोविंदम्* की रचना की।

अब हम तटवर्ती मार्ग से दक्षिण की ओर बढ़ते हुए कलिंग क्षेत्र में प्रवेश करते हैं, तो वहाँ हम **पूर्वी गंग वंश** (चित्र 4.4) को पाते हैं। इनके चोलों (जिनसे हम शीघ्र ही परिचित होंगे) के साथ वैवाहिक संबंध थे। यद्यपि कुछ अवसरों पर उनके मध्य संघर्ष भी हुआ तथा अन्य पड़ोसी राज्यों से भी संघर्ष होते रहे। फिर भी पूर्वी गंग वंश 12वीं शताब्दी के अंत तक पूर्वी भारत की सर्वाधिक स्थिर शक्तियों में से एक के रूप में स्थापित हुए। उनके अभिलेखों के अनुसार उनका राज्य गंगा से गोदावरी तक विस्तृत था। इसी वंश ने पुरी में जगन्नाथ मंदिर के निर्माण का आरंभ किया तथा 13वीं शताब्दी के मध्य में कोणार्क के भव्य सूर्य मंदिर का निर्माण कराया।

दक्षिण की ओर

आइए, अब हम अपनी यात्रा को दक्षिण की ओर आगे बढ़ाते हैं। पिछले अध्याय से क्या आपको **पश्चिमी चालुक्य** (जिनकी राजधानी क्षेत्र कल्याणी या कल्याण थी) और **पूर्वी चालुक्य** (चित्र 4.10) स्मरण हैं? पश्चिमी चालुक्य दक्कन की एक प्रमुख शक्ति थे

© NCERT not to be republished

और एक समय इनका शासन उत्तर में नर्मदा नदी तक विस्तृत था। पूर्वी चालुक्य वैवाहिक संबंधों के माध्यम से धीरे-धीरे चोलों के प्रभाव-क्षेत्र में सम्मिलित होते गए। इसके परिणामस्वरूप उनकी राजधानी वेंगी तथा उसके आस-पास का उपजाऊ क्षेत्र चोलों और पश्चिमी चालुक्यों के बीच तीव्र संघर्ष का केंद्र बन गया। इन निरंतर युद्धों के फलस्वरूप पश्चिमी चालुक्यों की शक्ति धीरे-धीरे क्षीण होती गई, जबकि काकतीय और होयसल वंश सुदृढ़ होते गए और अंत में उन्होंने पश्चिमी चालुक्यों का स्थान ले लिया। आइए, अब हम इन्हीं वंशों के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं।

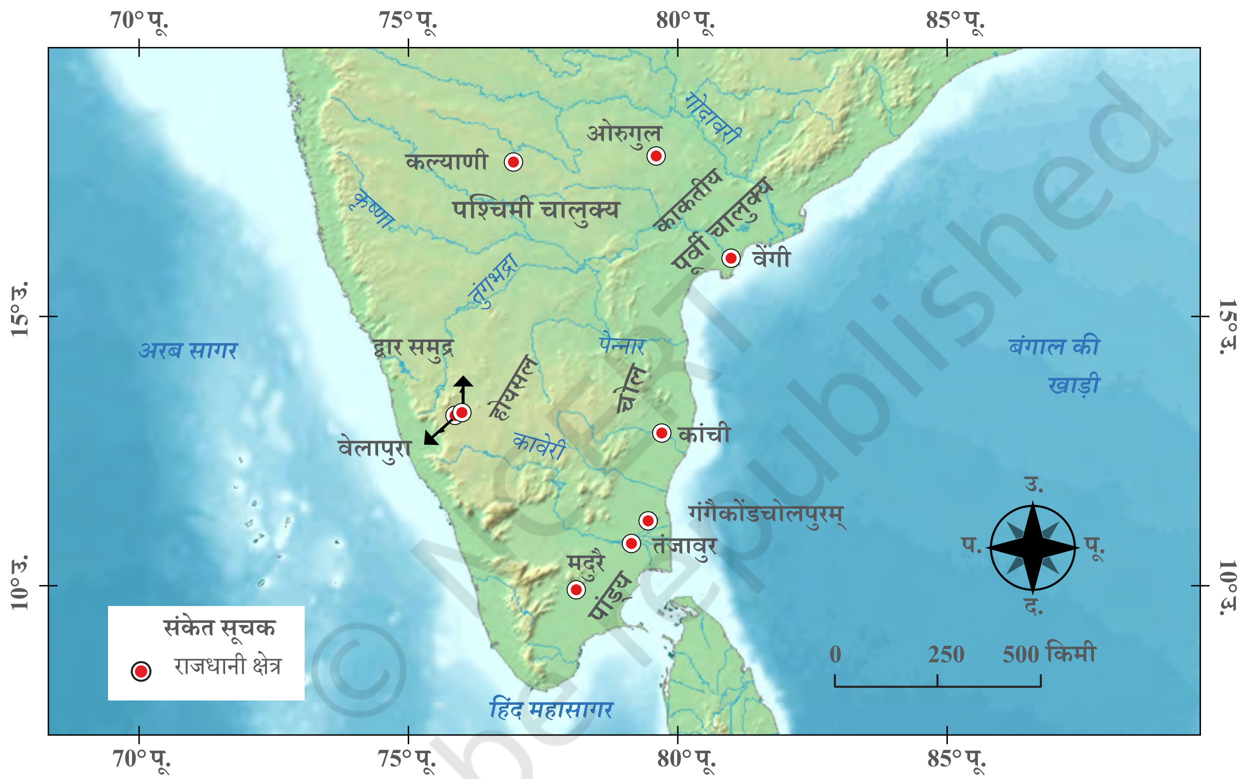

चित्र 4.10 — 11वीं और 12वीं शताब्दी में दक्षिण भारत के कुछ राजवंश

काकतीय वंश

12वीं शताब्दी में **काकतीयों** ने वर्तमान तेलंगाना और आंध्र प्रदेश के अधिकांश भाग पर अपनी सत्ता सुदृढ़ की (चित्र 4.10)। उनकी राजधानी ओरुगल्लु (वर्तमान का वारंगल) थी। यहाँ उन्होंने भव्य पाषाण तोरणों अर्थात प्रवेश-द्वारों से युक्त एक विशाल दुर्ग का निर्माण कराया (चित्र 4.11)। काकतीय शासकों में से कुछ शासकों ने संस्कृत में ग्रंथों की रचना की। साथ ही उन्होंने तेलुगु साहित्य को भी संरक्षण प्रदान किया। हनमकोंडा स्थित सहस्रस्तंभ मंदिर उनकी मंदिर स्थापत्य कला का उत्कृष्ट उदाहरण है।

© NCERT not to be republished

काकतीय शासकों ने ग्राम-स्वशासन पर आधारित सुदृढ़ स्थानीय प्रशासन को प्रोत्साहन दिया। उन्होंने प्रभावी राजस्व व्यवस्था तथा उन्नत सिंचाई-संरचना का विकास किया। इससे कृषि समृद्धि को पर्याप्त समर्थन प्राप्त हुआ।

चित्र 4.11 — काकतीयकालीन वारंगल किले का तोरण या प्रवेश-द्वार

होयसल वंश

होयसल वंश का उद्भव दक्षिणी कर्नाटक में हुआ। उनके नाम की उत्पत्ति से संबंधित एक रोचक किंवदंती प्रचलित है। कहा जाता है कि जब उनके संस्थापक 'साल' पूजा के लिए एक जैन मंदिर गए, तब उन्होंने वहाँ एक तपस्वी को ध्यान में लीन पाया। उसी समय एक बाघ वहाँ आ गया, तब तपस्वी ने प्राचीन कन्नड़ भाषा में कहा— "पॉय, साल", जिसका अर्थ है "प्रहार करो, साल।" साल ने तुरंत आज्ञा का पालन किया और तपस्वी का जीवन बचाया। इसके प्रतिफलस्वरूप तपस्वी ने साल को राजत्व का वरदान दिया। अभिलेखों में उल्लिखित तथा मंदिरों में उत्कीर्ण इस किंवदंती के अनुसार ही 'होयसल' नाम की उत्पत्ति मानी जाती है।

इस काल में वेलापुर (वर्तमान बेलूर) और द्वारसमुद्र (वर्तमान हलेबिडु) होयसलों की राजधानियाँ बनीं। राजा विष्णुवर्धन के शासन में होयसलों ने चालुक्य आधिपत्य से स्वयं को मुक्त किया, चोलों को चुनौती दी और क्रमशः वर्तमान कर्नाटक के अधिकांश भाग पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। उनके शासनकाल में कन्नड़ भाषा में सांस्कृतिक और साहित्यिक विकास हुआ किंतु उनकी सबसे प्रत्यक्ष और स्थायी विरासत उनकी विशिष्ट मंदिर स्थापत्य शैली है। इस शैली में सूक्ष्म रूप से उत्कीर्ण पाषाण स्तंभ, मूर्तियाँ और शिल्प-पट्टिकाएँ आदि सम्मिलित हैं। बेलूर और हलेबिडु के मंदिर विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं और होयसलों द्वारा निर्मित उन तीन मंदिरों में से हैं, जिन्हें यूनेस्को द्वारा विश्व-धरोहर स्मारक के रूप में मान्यता प्राप्त है।

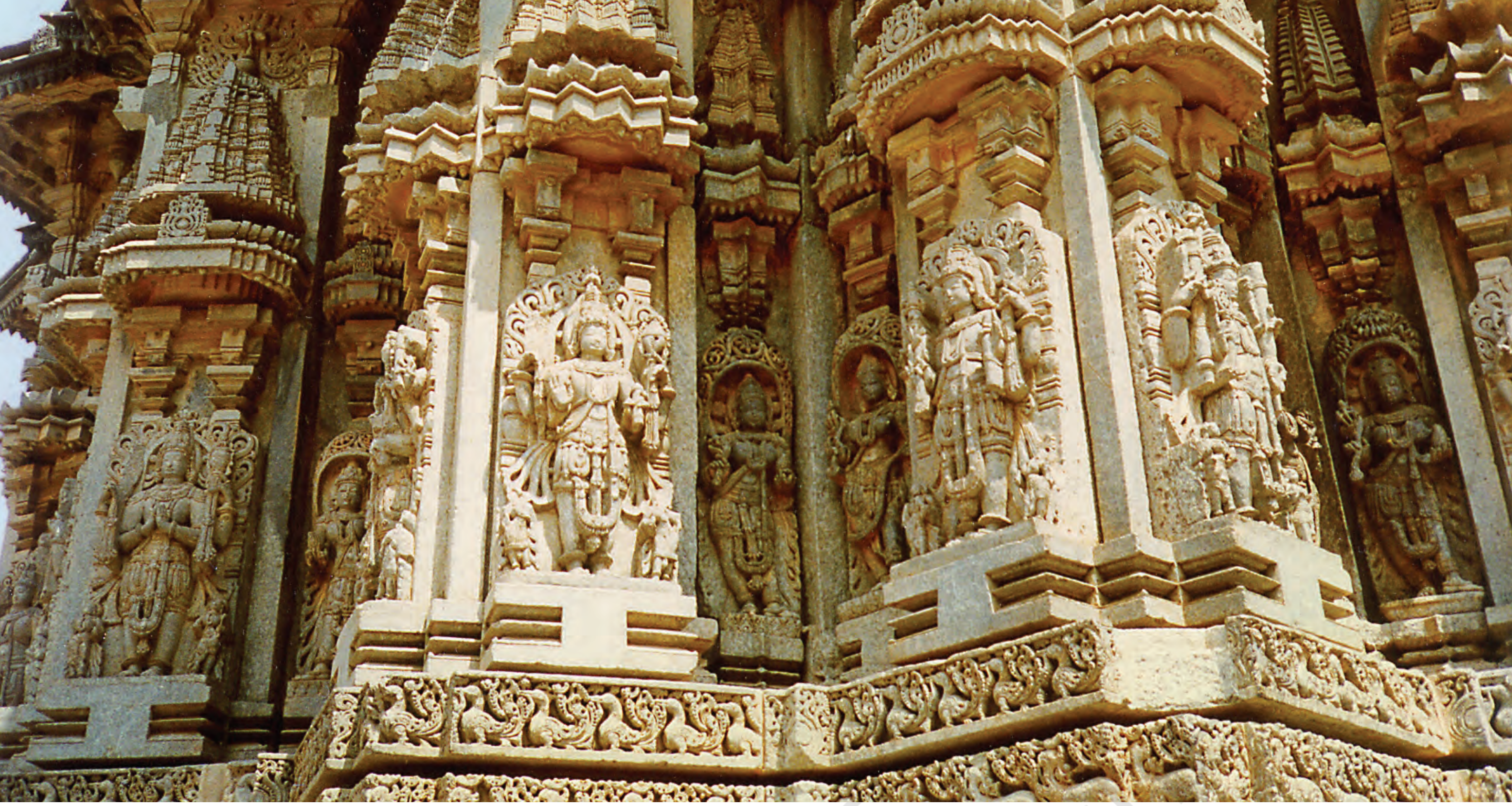

चित्र 4.12 — मैसूरु के निकट सोमनाथपुर स्थित होयसल मंदिर का आंशिक दृश्य। संपूर्ण स्थापत्य विन्यास की जटिलता, असंख्य सूक्ष्म एवं अलंकृत मूर्तियाँ तथा अधोभाग में उत्कीर्ण शिल्प-पट्टिकाएँ इस शैली की विशिष्ट विशेषताएँ हैं।

चोल वंश— समुद्रों के अधिपति

चोल वंश, जिनका संक्षिप्त विवरण हमें पिछले अध्याय में प्राप्त हुआ था। यह एक अत्यंत शक्तिशाली और प्रभावशाली राजवंश था जो वर्तमान तमिलनाडु क्षेत्र में उत्कर्ष पर पहुँचा। तंजौर (वर्तमान तंजावुर), गंगैकोंडचोलपुरम् तथा कांची (वर्तमान कांचीपुरम) उनकी प्रमुख राजधानियाँ थीं (चित्र 4.10)।

985 से लगभग तीन दशकों तक **राजराज चोल** ने शासन किया। उन्होंने वर्तमान कर्नाटक और आंध्र प्रदेश के कुछ भागों पर विजय प्राप्त की। उनके अभिलेखों में 'समुद्र के द्वीपों' की विजय का उल्लेख मिलता है जिसे अधिकांश इतिहासकार मालदीव द्वीपसमूह से संबद्ध मानते हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने श्रीलंका के उत्तरी भाग को भी जीता जिसमें अनुराधापुर राज्य भी सम्मिलित था। राजराज ने तंजावुर में बृहदीश्वर (जिसे राजराजेश्वरम भी कहा जाता है) मंदिर का निर्माण कराया। यह मंदिर स्थापत्य और अभियांत्रिकी का एक अद्‌भुत उदाहरण है (इसका अध्ययन हम कक्षा 8 में करेंगे)। यद्यपि चोल शासक मुख्यतः शैव मतावलंबी थे, फिर भी राजराज ने बंगाल की खाड़ी के पार स्थित श्रीविजय साम्राज्य (वर्तमान मलेशिया और इंडोनेशिया के कुछ भाग) के शासक द्वारा नागपट्टिनम् (उस समय चोलों का एक प्रमुख बंदरगाह) में एक बौद्ध विहार के निर्माण में सहायता प्रदान की।

राजराज के पुत्र **राजेंद्र चोल प्रथम** ने भी लगभग 30 वर्षों तक शासन किया तथा साम्राज्य का और अधिक विस्तार किया। उन्होंने वर्तमान ओडिशा और बंगाल के कुछ भागों पर विजय प्राप्त की। इन विजयों की स्मृति में उन्होंने 'गंगैकोंडचोल' की उपाधि धारण की। इस उपाधि का अर्थ है — "गंगा को प्राप्त करने वाला चोल"। यह उपाधि एक ओर उनके उत्तर भारत के अभियानों की ओर तथा दूसरी ओर गंगा नदी की पवित्रता से जुड़ी धार्मिक भावना की ओर संकेत करती है। राजेंद्र ने अपने पिता द्वारा आरंभ किए गए श्रीलंका के उत्तरी भाग की विजय को और सुदृढ़ किया। लगभग पचास वर्षों तक श्रीलंका का यह क्षेत्र चोल साम्राज्य का अभिन्न अंग बना रहा। अंततः श्रीलंकाई राजा विजयबाहु प्रथम ने अनेक युद्धों के पश्चात चोलों को वहाँ से निष्कासित कर दिया।

चित्र 4.13 — गंगैकोंडचोलपुरम् में राजेंद्र चोल द्वारा निर्मित मंदिर का प्रवेश-द्वार; यह मंदिर उत्तर भारत के शासकों पर चोलों की विजय की स्मृति में निर्मित कराया गया था।

राजेंद्र चोल प्रथम को श्रीविजय साम्राज्य के राजा के विरुद्ध किए गए अपने सफल नौसैनिक अभियान के लिए विशेष रूप से स्मरण किया जाता है। इस संघर्ष का मूल कारण चीन के साथ होने वाला समुद्री व्यापार था। चोलों के शासनकाल में चीन के साथ व्यापारिक संबंध अत्यंत समृद्ध हुए। इसकी पुष्टि पुरातात्विक प्रमाणों और अभिलेखों से होती है। राजेंद्र ने चीन में एक राजनयिक प्रतिनिधि मंडल भी भेजा था। किंतु चीन जाने वाले समुद्री मार्गों में से एक प्रमुख समुद्री मार्ग मलक्का जलडमरुमध्य से होकर गुजरता था (यह मलेशिया और इंडोनेशिया के सुमात्रा द्वीप के मध्य स्थित है)। इस पर श्रीविजय के राजा का नियंत्रण था। इससे चोलों और श्रीविजय के बीच प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हुई।

© not to be republished

राजेंद्र ने अपनी नौसेना को अभियान पर भेजा, जिसने श्रीविजय की सेनाओं को पराजित कर उनकी राजधानी पर अधिकार कर लिया। तथापि उन्होंने पराजित साम्राज्य पर स्थायी शासन स्थापित करने का प्रयत्न नहीं किया। यह एक दंडात्मक अभियान था, जिसे अनेक भारतीय व्यापारिक संघों का समर्थन प्राप्त था और इस अभियान ने अपने उद्‌देश्य सफलतापूर्वक प्राप्त कर लिए।

इसे अनदेखा न करें

हमें राजेंद्र के श्रीविजय साम्राज्य के विरुद्ध किए गए अभियान से यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि भारत और श्रीविजय के संबंध सदैव केवल संघर्षपूर्ण ही थे। इसके विपरीत एशिया के इन दोनों क्षेत्रों के मध्य गहन सांस्कृतिक तथा सामान्यतः शांतिपूर्ण संबंध थे। उदाहरणार्थ, श्रीविजय के एक शासक ने नालंदा को दान दिया तथा वहाँ एक और बौद्ध विहार की स्थापना हेतु पाल नरेश से भूमि की याचना की। यह अनुरोध स्वीकार कर लिया गया। इसका उल्लेख नालंदा से प्राप्त एक ताम्रपत्र में मिलता है।

इसी प्रकार, इनके श्रीलंका के साथ भी सुदृढ़ सांस्कृतिक संबंध थे। इन सांस्कृतिक संपर्कों के साथ श्रीलंका के राजा विजयबाहु प्रथम ने कलिंग की एक राजकुमारी से विवाह किया था।

आइए पता लगाएँ

चित्र 4.14 — बृहदीश्वर मंदिर में स्थित राजेंद्र चोल एवं उनके गुरु का एक प्राचीन चित्रांकन

चित्र 4.14 में प्रदर्शित चित्र को ध्यान से देखिए। क्या आप पहचान सकते हैं कि इस चित्र में राजा कौन है और गुरु कौन है? राजा की मुद्रा तथा उसकी समग्र भाव-भंगिमा क्या अभिव्यक्त करती है?

अपने साम्राज्य में चोलों ने व्यापक लोककल्याणकारी कार्य किए। यातायात को सुगम बनाने हेतु सड़कों का निर्माण किया गया, सिंचाई के लिए तालाब, कुएँ और नहरें बनाई गईं तथा कृत्रिम झीलों का निर्माण किया गया। किंतु पड़ोसी राज्यों विशेषतः पश्चिमी चालुक्यों, पांड्यों तथा श्रीलंका के शासकों के साथ उनके बार-बार और व्यापक संघर्षों ने राजकोष पर अतिरिक्त भार डाला।

इन परिस्थितियों में चोल साम्राज्य का पतन हुआ। 13वीं शताब्दी तक चोल साम्राज्य अत्यंत संकुचित हो गया और अंततः पांड्य वंश में विलीन हो गया।

पुनः उत्तरी भारत की ओर

अब हम एक बार पुनः नए सिरे से उत्तर की ओर बढ़ते हैं क्योंकि विदेशी आक्रमणों का दूसरा चरण भारत पर अधिक स्थायी प्रभाव डालने वाला था।

परमार वंश

परमार प्रारंभ में प्रतिहारों और राष्ट्रकूटों के सामंत थे। 10वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में वे मालवा (वर्तमान मध्य प्रदेश का एक क्षेत्र) में एक स्वतंत्र शक्ति के रूप में उभरे। तब इनकी राजधानी धारा (वर्तमान धार) थी। परमार वंश के सर्वाधिक प्रसिद्ध शासक **भोज** थे, जिन्होंने 1010 से लगभग आधी शताब्दी तक शासन किया। उन्होंने अनेक सैन्य अभियानों का नेतृत्व किया और पश्चिमी तट के कोंकण क्षेत्र से लेकर राजस्थान के कुछ भागों तक अपने राज्य का विस्तार किया। वे उन भारतीय शासकों में भी सम्मिलित थे, जिन्होंने महमूद गज़नवी के विरुद्ध हिंदू शाही शासकों की सहायता हेतु अपनी सेनाएँ भेजीं।

1055 में भोज की मृत्यु के पश्चात परमारों का क्रमिक पतन हुआ। इसका एक प्रमुख कारण पड़ोसी शक्तियों के साथ निरंतर संघर्ष था।

विद्वान-राजा

भोज परमार को गुर्जर-प्रतिहार वंश के राजा भोज (9वीं शताब्दी) से भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए, जिनका उल्लेख हमने पिछले अध्याय में किया है। भोज परमार अपने कुशल प्रशासन और जनकल्याण के कार्यों के लिए प्रसिद्ध थे। उन्हें भोजपुर नगर की स्थापना का श्रेय दिया जाता है। उन्होंने भोजपुर और वर्तमान भोपाल नगर के मध्य अनेक नदियों के जल को नियंत्रित कर एक विशाल झील का निर्माण कराया जो सिंचाई तथा जल-प्रबंधन— दोनों उद्देश्यों की पूर्ति करती थी। भोपाल नगर का नाम 'भोजपाल' से व्युत्पन्न माना जाता है, जिसका अर्थ है 'भोज का बाँध अथवा दुर्ग'। उस विशाल झील का केवल एक छोटा भाग आज वर्तमान भोपाल के निकट विद्यमान है, जिसे आज 'भोजताल' कहा

चित्र 4.15 — भोपाल में भोजताल झील के तट पर स्थित राजा भोज की एक आधुनिक प्रतिमा

© NCERT not to be republished

जाता है, जबकि इस झील की मिट्टी और शिलाबंधों (तटबंधों) के अवशेष दूर-दूर तक आज भी देखे जा सकते हैं। एक स्थानीय कहावत उस झील की विशालता का इस प्रकार स्मरण कराती है— "यदि कोई झील है तो वह केवल भोजपाल की झील है; शेष सब तो केवल तालाब हैं।"

भोज ने भव्य भोजेश्वर मंदिर का भी निर्माण कराया जो अपूर्ण रहने पर भी स्थापत्य कला की एक अद्वितीय कृति माना जाता है।

भोज एक उदार संरक्षक थे। उन्होंने विद्वानों को संरक्षण दिया और संस्कृत साहित्य को प्रोत्साहन प्रदान किया। उनके संरक्षण में उनकी राजधानी विद्या का एक प्रसिद्ध केंद्र बन गई, जहाँ कला और विज्ञान का उत्कर्ष हुआ तथा देशभर के विभिन्न भागों से विद्वान, कवि तथा कलाकार आकर्षित हुए।

भोज स्वयं एक प्रख्यात विद्वान एवं उत्कृष्ट लेखक थे, जिन्होंने अनेक विषयों पर रचनाएँ लिखीं। उनकी कृतियों में *समरांगण सूत्रधार* अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इस ग्रंथ में वास्तुकला, नगर-योजना, मंदिर-निर्माण, मूर्तिकला तथा यांत्रिक उपकरणों पर विस्तार से वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त उनके कृतित्व में शासन संबंधी ग्रंथ, संस्कृत काव्यशास्त्र संबंधी ग्रंथ, पतंजलि के योगसूत्र पर टीका और आयुर्वेद से संबंधित ग्रंथ सम्मिलित हैं।

एक विवेकशील और विद्वान शासक के रूप में भोज की कीर्ति गाथा बन गई और उनके व्यक्तित्व से संबंधित अनेक कथाएँ और लोककथाएँ प्रचलित हुईं।

एक निर्णायक मोड़— भारत में गोरी वंश

जैसा कि हमने देखा, जिस कालखंड का हम अध्ययन कर रहे हैं, उसमें भारत पर आक्रमण करने वाला पहला प्रमुख आक्रांता महमूद ग़ज़नवी था। उसके पश्चात ग़ज़नवी साम्राज्य अफगानिस्तान और विभिन्न दिशाओं से होने वाले आक्रमणों का सामना न कर सका और वह शीघ्र ही विघटित हो गया। ग़ज़नी के पश्चिम में स्थित पर्वतीय क्षेत्र गूर (वर्तमान गोर) के सरदार पहले ग़ज़नवियों के सामंत थे, किंतु अब अवसर का लाभ उठाते हुए उन्होंने ग़ज़नी पर अधिकार कर लिया और अपनी शक्ति का विस्तार आरंभ किया।

गोरी वंश का शासक मुहम्मद— अब गोर का सुल्तान बना (जो प्रायः '**मुहम्मद गोरी**' के नाम से जाना जाता है)। इसने शीघ्र ही पंजाब और सिंध के कुछ भागों को अपने अधीन कर लिया, किंतु गुजरात की ओर विस्तार के उसके प्रयास असफल रहे, क्योंकि 1178 में उसे माउंट आबू के निकट चालुक्य शासक मूलराज द्वितीय ने पराजित किया। इस युद्ध के संबंध में एक अन्य विवरण भी प्राप्त होता है। इसके अनुसार इस विजय का नेतृत्व मूलराज की माता रानी नाईकी देवी ने किया था। वे अपने अल्पायु पुत्र को लेकर

© NCERT not to be republished

घोड़े पर सवार होकर युद्धभूमि में उतरीं और सेना का नेतृत्व करके विजय प्राप्त की। गुजरात के जैन विद्वान मेरुतुंग ने इस घटना का उल्लेख अपने एक अर्ध-ऐतिहासिक ग्रंथ में किया है; यद्यपि उन्होंने यह वर्णन एक शताब्दी से अधिक समय के पश्चात लिखा। इतिहासकारों में इस बात को लेकर मतभेद है कि इस विजय का श्रेय रानी नाईकी देवी को दिया जाए या उनके पुत्र मूलराज को। सभी प्राप्त स्रोतों में इस युद्ध में मुहम्मद गोरी की पराजय का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

इसे अनदेखा न करें

चौलुक्य वंश को सोलंकी वंश के नाम से भी जाना जाता है। इस वंश ने 10वीं से 13वीं शताब्दी के मध्य गुजरात और राजस्थान के कुछ भागों पर शासन किया। यह वंश दक्कन के चालुक्य वंश से भिन्न था, जिनका उल्लेख हमने पिछले अध्याय में किया है। इस वंश की राजधानी अणहिलवाड़ थी जिसे आज 'पाटन' के नाम से भी जाना जाता है (इन्हें कभी-कभी 'गुजरात के चालुक्य' भी कहा जाता है)।

इसी काल में राजस्थान तथा इसके समीपवर्ती क्षेत्रों में एक शक्तिशाली राजपूत वंश **चाहमान वंश** उदित हुआ। इन्हें चौहान भी कहा जाता था। इनके शासकों ने अन्य भारतीय वंशों से युद्ध करने के साथ-साथ महमूद ग़ज़नवी जैसे आक्रांताओं को भी अनेक बार परास्त किया। 12वीं शताब्दी में दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश के कुछ भागों सहित अधिकांश राजस्थान पर विजय प्राप्त कर उन्होंने एक सशक्त व्यापक साम्राज्य की स्थापना की, जिसकी राजधानी अजयमेरु (वर्तमान अजमेर) थी।

पृथ्वीराज तृतीय को आज प्रायः पृथ्वीराज चौहान कहा जाता है। इन्होंने गुजरात और मालवा के शासकों सहित पड़ोसी राजाओं के साथ अनेक युद्ध किए। 1191 में उन्होंने तराइन (वर्तमान हरियाणा के तरावड़ी) में मुहम्मद गोरी को पराजित भी किया। किंतु एक वर्ष के भीतर ही मुहम्मद गोरी एक विशाल सेना के साथ लौटा और दोनों के मध्य पुनः संघर्ष हुआ। तराइन के द्वितीय युद्ध में भीषण युद्ध के पश्चात मुहम्मद गोरी ने पृथ्वीराज को परास्त कर उनकी हत्या कर दी।

चित्र 4.16 — पृथ्वीराज तृतीय का एक उत्तरकालीन चित्रांकन

© NCERT not to be republished

तत्पश्चात मुहम्मद गोरी ने आगे बढ़ते हुए दिल्ली पर अधिकार कर लिया। महमूद गज़नवी केवल लूटपाट कर वापस लौट जाता था, जबकि इसके विपरीत मुहम्मद गोरी का उद्देश्य भारत के भूभाग पर स्थायी अधिकार स्थापित करना था। यद्यपि वह स्वयं गज़नी लौट गया, परंतु उसने अपने विश्वासपात्र सैन्य अधिकारियों को अपनी विजयों को सुदृढ़ करने के लिए वहीं नियुक्त कर दिया। इसमें उसका प्रमुख सेनापति 'कुतुबुद्दीन ऐबक' था, जिसने आगे चलकर दिल्ली सल्तनत की स्थापना की (इसका अध्ययन हम कक्षा 8 में करेंगे)।

इसे अनदेखा न करें

चाहमान वंश के शासनकाल में दिल्ली एक समृद्ध नगर था। उनके अभिलेखों में इसका उल्लेख 'ढिल्लिका' के रूप में मिलता है। कालांतर में 'ढिल्लिका' का संक्षिप्तीकरण 'ढिल्ली' हुआ और अंततः यही नाम विकसित होकर 'दिल्ली' के रूप में प्रचलित हो गया।

उत्तर भारत में अपने अभियानों के समय ऐबक को तीव्र प्रतिरोध का सामना करना पड़ा, किंतु वह गोर राज्य के अधिकार-क्षेत्र का विस्तार करने में सफल रहा। उसके सेनानायक बख्तियार खिलजी (या खलजी) ने 12वीं शताब्दी के अंत से पूर्वी भारत में अभियान संचालित किए और बिहार तथा बंगाल पर विजय प्राप्त की। बंगाल की ओर बढ़ते समय उसने नालंदा और विक्रमशिला जैसे विश्वविद्यालयों एवं विशाल बौद्ध विहारों को ध्वस्त कर दिया। उसने अपार धन लूटा तथा बड़ी संख्या में भिक्षुओं की हत्या की। बौद्ध इतिहासकारों में इस विषय पर व्यापक सहमति है कि इन प्रमुख शिक्षा-केंद्रों के विनाश ने भारत में बौद्ध धर्म के पतन की प्रक्रिया को और तीव्र किया, यद्यपि कुछ अन्य कारकों की भी भूमिका रही होगी।

चित्र 4.17 — 'मुहम्मद इब्न साम' (मुहम्मद गोरी का औपचारिक नाम) के नाम से जारी एक स्वर्ण मुद्रा। इसमें उसे अश्वारूढ़ विजेता के रूप में दर्शाया गया है।

चित्र 4.18 — मुहम्मद गोरी द्वारा जारी की गई एक अन्य मुद्रा। इसमें देवी लक्ष्मी का अंकन है। यह प्रतीक कुषाण काल से मुद्राओं पर व्यापक रूप से प्रयुक्त होता रहा था; संभवतः इसी कारण मुहम्मद गोरी ने भी इसे अंगीकृत किया।

© NCERT not to be republished

आइए पता लगाएँ

बख्तियार खिलजी के बिहार अभियान के लगभग 60 वर्ष पश्चात लेखन करते हुए इतिहासकार 'मिनहाज अल-सिराज जूजजानी' ने अपनी कृति *तबकात-ए-नासिरी* में वर्णन किया है कि किस प्रकार बख्तियार की सेनाओं ने एक 'दुर्ग' पर अधिकार स्थापित किया और "अत्यधिक धन-संपदा लूट कर प्राप्त की"। वह आगे लिखता है, "उस स्थान के अधिकांश निवासी ब्राह्मण थे, उन सभी ब्राह्मणों के सिर मुंडित थे और उन सभी को मार दिया गया था। वहाँ अत्यंत बड़ी संख्या में पुस्तकें थीं... यह ज्ञात हुआ कि वह संपूर्ण दुर्ग और नगर एक महाविद्यालय था और उनकी भाषा में महाविद्यालय को 'बिहार' कहा जाता है।"

→ 'विहार' शब्द के अर्थ को स्मरण करते हुए तथा साथ ही यह भी ध्यान में रखते हुए कि प्राचीन अभिलेखों में नालंदा को 'नालंदा महाविहार' कहा गया है। क्या आप उपर्युक्त अनुच्छेद में ऐसे दो और संकेत ढूँढ़ सकते हैं जिनसे नालंदा विश्वविद्यालय के निकट स्थित उस 'दुर्ग' की पहचान की जा सके? (संकेत— आपके विचार में ये 'ब्राह्मण' वास्तव में कौन थे?)

इसे अनदेखा न करें

नालंदा का प्रसिद्ध पुस्तकालय तीन मंजिला भवन में था और उसमें लाखों पांडुलिपियाँ संगृहीत थीं। चीनी यात्री 'इत्सिंग' और 'श्वेनजांग' ने वहाँ कुछ समय निवास कर पांडुलिपियों का अध्ययन किया और अनेक ग्रंथ अपने साथ चीन ले गए। बख्तियार खिलजी के आक्रमण के पश्चात पुस्तकालय कई महीनों तक जलता रहा। वहाँ अध्ययन और अध्यापन कर रहे तिब्बती विद्वान जितनी पांडुलिपियाँ उठा सकते थे, उतनी अपने साथ लेकर तिब्बत लौट गए।

चित्र 4.19 — नालंदा महाविहार का आंशिक दृश्य

लगभग तीन दशकों बाद जब तिब्बती भिक्षु धर्मस्वामी ने उस स्थान का भ्रमण किया, तो उन्होंने उसे पूर्ण ध्वस्त अवस्था में पाया। तथापि 90 वर्षीय आचार्य राहुल श्रीभद्र तब भी लगभग 70 विद्यार्थियों की एक कक्षा को शिक्षित कर रहे थे— संभवतः यह नालंदा की अंतिम कक्षा थी।

© NCERT not to be republished

लगभग 1203–04 में बख्तियार खिलजी जब और अधिक पूर्व की ओर बंगाल में बढ़ा, तो उसने 'नादिया' पर उस समय अचानक आक्रमण कर दिया। उस समय सेन वंश के शासक तनिक भी तैयार नहीं थे, जिससे वे पराजित हो गए। इसके साथ ही बंगाल के अधिकांश भाग पर सेन वंश का नियंत्रण पूर्णतया समाप्त हो गया। तत्पश्चात खिलजी ने तिब्बत की ओर एक अभियान का प्रयास किया, परंतु इसके स्पष्ट कारण ज्ञात नहीं हैं। यद्यपि 1205 में कामरूप से होकर जाते समय खिलजी को स्थानीय शासक की सेनाओं का सामना करना पड़ा। इन्होंने खिलजी की सेना को गंभीर क्षति पहुँचाई। कहा जाता है कि स्थानीय जनसमुदाय ने अन्न और पशुचारे के भंडारों को नष्ट कर आक्रांता सेना को भूख से त्रस्त कर दिया। बख्तियार अपने कुछ सैनिकों के साथ किसी प्रकार प्राण बचाकर बंगाल की ओर भागा, किंतु तब तक उसकी शक्ति अत्यंत क्षीण हो चुकी थी।

1206 में मुहम्मद गोरी की मृत्यु हो गई; उसी वर्ष बख्तियार खिलजी की भी हत्या कर दी गई, संभवत: ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी हत्या उसके अपने ही सैनिकों द्वारा की गई थी। उत्तर भारत में उसका अधिकार-क्षेत्र मुहम्मद गोरी के सेनानायकों के नियंत्रण में बना रहा।

शासन, व्यापार और सांस्कृतिक जीवन

इस कालखंड में हमने बहुत से युद्ध देखे। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि प्रत्येक शक्तिशाली राजा को एक बड़ी स्थायी संख्या में सेना बनाए रखनी पड़ती थी। इसके लिए सैनिकों की नियुक्ति, वेतन, शस्त्रों की आपूर्ति, अन्न, घोड़े और हाथियों के (तथा उत्तर भारत के कुछ भागों में आवश्यक वस्तुओं के परिवहन के लिए ऊँटों के) पालन-पोषण हेतु अत्यंत संसाधनों की आवश्यकता होती थी। इसलिए शक्तिशाली राज्यों को सामंतों और व्यापारियों से कर एकत्रित करने हेतु एक कुशल प्रशासनिक व्यवस्था विकसित करनी पड़ी। पिछले अध्याय में ऐसी प्रशासनिक प्रणालियों की मुख्य विशेषताओं का वर्णन किया गया था। इस अध्याय में उसमें कोई मौलिक परिवर्तन नहीं दिखाई देता है सिवाय इसके कि मुहम्मद गोरी की प्रणाली अपेक्षाकृत अधिक केंद्रीकृत थी। इसमें अधिकारियों को राजस्व संग्रहण और सैन्य सेवा के स्थान पर अस्थायी भूमि-अनुदान प्रदान किए जाते थे। यह प्रणाली आगे चलकर दिल्ली सल्तनत के काल में और विकसित हुई, जिसका अध्ययन हम कक्षा 8 में करेंगे।

जैसा कि हम देखते हैं कि इस कालखंड में राजनैतिक अस्थिरता बनी रही। इसके पश्चात भी भारत का चीन और दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ व्यापार निरंतर बढ़ता रहा। इसके परिणामस्वरूप भारत के पश्चिमी तट पर अनेक स्थानों से विदेशों की मुद्राएँ और मृद्भांड (मिट्टी के बर्तन) प्राप्त हुए हैं। पश्चिमी तट पर अनेक बंदरगाह और जहाज

© NCERT not to be republished

चित्र 4.20 — खजुराहो का कंदरिया महादेव मंदिर

निर्माण शिल्पशालाएँ स्थित थीं, जहाँ समुद्रगामी विशाल जहाजों का निर्माण किया जाता था। भारत में आंतरिक और बाह्य व्यापार सक्रिय था जिसे कुछ शक्तिशाली व्यापारिक संघों का समर्थन प्राप्त था। तथापि अर्थव्यवस्था का मूल आधार वस्तुतः कृषि ही थी— जैसा कि आज भी है। प्राचीन ग्रंथों में कृषि-उत्पादों का उल्लेख बार-बार प्राप्त होता है, जैसे— गंगा के मैदानों और बंगाल का चावल और जौ, कश्मीर का केसर, केरलम के मसाले, बंगाल की अदरक, उत्तर-पश्चिम भारत का गेहूँ तथा पश्चिम भारत और दक्कन की कपास। इस अध्याय तथा गत अध्याय में उल्लिखित अनेक शासकों ने सिंचाई-कार्यों का संचालन किया जिससे मौसमी वर्षा की अनियमितताओं से होने वाली समस्याओं से राहत प्रदान की जा सकती थी।

जब अर्थव्यवस्था समृद्ध होती है तो कला, साहित्य, विज्ञान (जैसा कि हमने भास्कराचार्य के संदर्भ में देखा), धार्मिक जीवन और अन्य सांस्कृतिक पक्ष भी विकसित होते हैं। पिछले अध्याय में हमने 'हर्ष' के संस्कृत साहित्य में योगदान का उल्लेख किया था तथा इस अध्याय में विद्वान-राजा 'भोज' की रचनाओं का उल्लेख है। यहाँ 12वीं शताब्दी के चालुक्य शासक सोमेश्वर तृतीय का भी उल्लेख आवश्यक है, जिन्होंने *मानसोल्लास* विश्वकोश की रचना की। इस ग्रंथ में खगोलशास्त्र, वास्तुकला, संगीत, चिकित्सा, पाककला और खेलों तक के अनेक विषय समाहित हैं। यह ग्रंथ राजकीय जीवन और शासन-व्यवस्था का समग्र मार्गदर्शन देता है तथा इसमें प्रजा के प्रति राजा के कर्तव्यों पर विशेष बल दिया

चित्र 4.21 एवं 4.22 — हैदराबाद में रामानुजाचार्य (बाएँ) और बसवकल्याण में बसवेश्वर (दाएँ) की विशाल आधुनिक प्रतिमाएँ

गया है। इस कालखंड में भारत के विभिन्न भागों में अनेक भव्य मंदिरों का निर्माण हुआ। इस अध्याय में पूर्व वर्णित मंदिरों के अतिरिक्त इन दो शताब्दियों में खजुराहो के चंदेलों द्वारा निर्मित दर्जनों मंदिरों में 'कंदरिया महादेव' और 'लक्ष्मण मंदिर' स्थापत्य के अद्‌भुत उदाहरण हैं।

इन दो शताब्दियों में अनेक उल्लेखनीय विचारक हुए। इनमें **रामानुजाचार्य** दक्षिण भारत के महान दार्शनिक थे, जिन्होंने अपने समय की प्रमुख दार्शनिक परंपरा, 'आदि शंकराचार्य' के 'अद्वैत वेदांत' को चुनौती दी थी। अद्वैत वेदांत का संक्षिप्त परिचय पिछले अध्याय में दिया गया है। रामानुजाचार्य ने 'विशिष्टाद्वैत वेदांत' दर्शन की स्थापना कर उसका प्रसार किया। इस दर्शन के अनुसार संसार और जीवात्माओं को वास्तविक माना गया है तथा इसमें भक्ति एवं ईश्वर के प्रति शरणागति को मोक्ष का मार्ग माना गया है।

बसवेश्वर (इन्हें बसवण्णा या संक्षेप में बसव भी कहा जाता है) कल्याणी (वर्तमान कर्नाटक का बसवकल्याण) में एक राजकीय मंत्री थे। इन्होंने अपने राजसी पद को त्यागकर सामाजिक और धार्मिक सुधार की दिशा में कार्य किया। उन्होंने 'लिंगायत आंदोलन' की स्थापना की जिसने जातिगत भेदभाव और अनुष्ठानवाद को अस्वीकार कर व्यक्तिगत भक्ति और कर्मनिष्ठता की शिक्षा दी। व्यक्ति के सामाजिक पद के स्थान पर उसके आंतरिक मूल्य को ध्यान में रखते हुए बसवण्णा ने सभी पुरुषों और स्त्रियों की आध्यात्मिक क्षमता को समान रूप से प्रोत्साहित किया। कन्नड़ भाषा में रचित उनकी लघु कविताओं को 'वचन' भी कहा जाता है। ये वचन उनके आध्यात्मिक और नैतिक दृष्टिकोण के साथ-साथ प्रभु के प्रति उनकी दृढ़ भक्ति को स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हैं।

© NCERT not to be republished

इन दोनों संत विचारकों का दक्षिण भारत की संस्कृति और समाज पर विशेष प्रभाव पड़ा। अन्य भक्तिमार्गी संतों की तरह इस उपमहाद्वीप में इन्होंने भी आध्यात्मिकता को अधिक व्यक्तिगत और सहज बनाया तथा सामाजिक कुरीतियों को दूर करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

आइए पता लगाएँ

कल्याणी में बसवण्णा ने 'अनुभव-मंडप' की स्थापना की। यहाँ संतों और दार्शनिकों सहित प्रत्येक सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक अथवा किसी भी भाषाई पृष्ठभूमि के पुरुष और स्त्रियाँ एकत्रित होकर जीवन के सभी पक्षों पर चर्चा कर सकते थे। चर्चा के विषयों में नैतिक मूल्य और धर्म इत्यादि भी सम्मिलित होते थे।

→ आपके अनुसार बसवण्णा ने सभी पृष्ठभूमि के व्यक्तियों को एक साथ आकर विचार-विमर्श करने के लिए क्यों प्रेरित किया?

→ यदि वर्तमान समय में 'अनुभव-मंडप' जैसा कोई स्थान हो तो वहाँ किन-किन महत्त्वपूर्ण विषयों पर चर्चा की जानी चाहिए?

→ एक न्यायपूर्ण और सभ्य समाज के लिए हम अनुभव-मंडप की भावना से कौन-से शिक्षाप्रद निष्कर्ष ग्रहण कर सकते हैं?

स्थिति का मूल्यांकन

प्रत्येक संक्रमण काल की भाँति ही इस काल में भी परिवर्तन और निरंतरता दोनों दृष्टिगोचर होती हैं।

सबसे प्रत्यक्ष परिवर्तन तो तुर्क आक्रांताओं द्वारा किए गए सैन्य अभियानों के रूप में और उत्तर भारत के कुछ भागों में विदेशी शासन की स्थापना के रूप में दिखाई देता है जिसमें व्यापक लूट-पाट की गई तथा मंदिरों, नगरों और शिक्षा-केंद्रों का विनाश हुआ। इससे शक्ति-संतुलन में बड़ा परिवर्तन आया। इसी के साथ भारत के धार्मिक परिदृश्य में इस्लाम का एक नए मत के रूप में प्रसार भी आरंभ हुआ। साथ ही साथ जिन दो शताब्दियों पर हमारा ध्यान केंद्रित रहा, उसी काल में उत्तरी भारत के व्यापक क्षेत्र और समग्र दक्षिण भारत तुर्क आक्रांताओं के नियंत्रण से बाहर रहे। पड़ोसी राज्य एक-दूसरे के विरुद्ध युद्ध करते रहे। यद्यपि समय-समय पर उनके मध्य गठबंधन भी होते रहते थे। कुछ अवसरों पर तो स्थानीय शासक विदेशी आक्रांताओं के विरुद्ध एक संयुक्त गठबंधन भी बनाते थे।

© NCERT not to be republished

चित्र 4.23 — कंबोडिया का अंकोरवाट मंदिर

इसे अनदेखा न करें

12वीं शताब्दी में ख्मेर राजा सूर्यवर्मन द्वितीय ने कंबोडिया के अंकोरवाट मंदिर (चित्र 4.23) का निर्माण कराया था। यह विश्व का सबसे बड़ा धार्मिक स्मारक है। यह मंदिर मूलतः भगवान विष्णु को समर्पित है। इसमें प्राचीन ख्मेर भाषा में तथा संस्कृत भाषा में अभिलेख प्राप्त होते हैं। साथ ही रामायण और महाभारत के प्रसंगों को दर्शाने वाले विशाल भित्ति-शिल्प भी उत्कीर्ण हैं। मंदिर में पाँच भव्य विशाल शिखर हैं जो मेरु पर्वत के प्रतीक हैं। हिंदू पौराणिक परंपरा में मेरु पर्वत को ब्रह्मांड के केंद्र में स्थित माना गया है। स्थापत्य की दृष्टि से अंकोरवाट मंदिर में दक्षिण भारतीय मंदिरों की अनेक विशेषताएँ दृष्टिगत होती हैं, किंतु भव्यता की दृष्टि से यह मंदिर अधिक विस्तृत है। 12वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में राजनैतिक सत्ता परिवर्तन के पश्चात यह मंदिर धीरे-धीरे बौद्ध मंदिर में परिवर्तित कर दिया गया। यह मंदिर उन अनेक उदाहरणों में से एक उदाहरण है जो यह दर्शाता है कि किस प्रकार भारत की धार्मिक और सौंदर्यपरक परंपराओं ने दक्षिण-पूर्व एशिया की संस्कृतियों को गहनता से प्रभावित किया।

उत्तर भारत में विभिन्न अवरोधों के पश्चात भी आंतरिक और बाह्य व्यापार निरंतर चलता रहा तथा व्यापारिक संघ बने रहे और परिस्थितियों के अनुसार स्वयं को परिवर्तित करते रहे। बाह्य व्यापार दक्षिण-पूर्व एशिया और चीन में भारतीय संस्कृति के

© NCERT not to be republished

प्रसार का माध्यम भी था। भारत के अधिकांश भागों में सांस्कृतिक परंपराएँ बनी रहीं। चिंतन और आस्था की नवीन परंपराएँ उद्भूत हुईं एवं संस्कृत के साथ-साथ अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में भी कई साहित्यिक तथा वैज्ञानिक रचनाएँ हुईं।

इस कालखंड से हमें यह प्रमुख संदेश मिलता है कि संघर्षों के मध्य भी सहनशीलता तथा ज्ञान, अध्ययन और रचनात्मकता की अटल शक्ति बनाए रखना है।

आगे बढ़ने से पहले...

- 11वीं और 12वीं शताब्दी भारतीय इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन का प्रतीक हैं (इसी कारण इस अध्याय का शीर्षक ऐसा रखा गया है)।
- 11वीं शताब्दी में महमूद गज़नवी ने हिंदू शाही शासकों को परास्त करने के पश्चात उत्तर भारत में अनेक आक्रमण किए, भीषण लूट-पाट की, मंदिरों को ध्वस्त किया, भारतीयों को बंदी बनाकर उन्हें अपने साथ गज़नी ले गया। तथापि उसने भारत में अपने स्थायी शासन की स्थापना करने का प्रयत्न नहीं किया।
- 12वीं शताब्दी में मुहम्मद गोरी और उसके सेनापतियों ने दिल्ली और गंगा के मैदान के बड़े भागों— बंगाल तक को जीत लिया, जिससे व्यापक विनाश हुआ। विशेष रूप से प्रमुख शिक्षा-केंद्रों को ध्वस्त कर खंडहरों में परिवर्तित कर दिया गया।
- फिर भी उत्तर भारत के बड़े भूभाग और समग्र दक्षिण भारत तुर्की आक्रांताओं के नियंत्रण से बाहर रहे। शक्तिशाली राज्य प्रायः परस्पर युद्धरत रहे, यद्यपि समय-समय पर उनके मध्य गठबंधन भी होते रहते थे।
- आंतरिक और बाह्य व्यापार, कला और साहित्य तथा भव्य स्थापत्य निर्माण फलते-फूलते रहे और भारतीय संस्कृति के तत्त्व विदेशों तक विशेषकर दक्षिण-पूर्व एशिया और चीन में प्रसारित हुए।

प्रश्न और क्रियाकलाप

1. इस अध्याय में विचाराधीन कालखंड को भारतीय इतिहास में एक प्रमुख संक्रमण-काल क्यों माना जाता है? इस कालखंड से परिवर्तन और निरंतरता के दो उदाहरण दीजिए।
2. पिछले अध्याय में चित्र 3.27 का निरीक्षण कीजिए और इसी प्रकार की 'वंश परंपरा' बनाइए जिसमें इस अध्याय में उल्लिखित सभी या अधिकांश वंश सम्मिलित हों।
3. उपमहाद्वीप के मानचित्र पर इस अध्याय के अधिकांश या सभी वंशों को समाहित करते हुए एक भौगोलिक यात्रा-मार्ग अंकित कीजिए (अध्याय की कथावस्तु में वर्णित कुछ 'यात्राओं' से भी प्रेरणा ली जा सकती है)।

© NCERT not to be republished

4. भारत और दक्षिण-पूर्व एशिया के मानचित्र की सहायता से उस दूरी का अनुमान लगाइए, जो राजेंद्र प्रथम की नौसेना ने अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए की होगी?

5. निम्नलिखित युग्मों का मिलान कीजिए—

(क) पूर्वी गंग	(i) बेलूर
(ख) चंदेल	(ii) बृहदीश्वर मंदिर
(ग) परमार	(iii) कोणार्क सूर्य मंदिर
(घ) होयसल	(iv) कंदरिया महादेव मंदिर
(ङ) चोल	(v) भोजेश्वर मंदिर

6. समूहों में कार्य करते हुए इस अध्याय में उल्लिखित वंशों की पिछले अध्याय के वंशों से तुलना कीजिए। एक सारणी बनाकर दोनों कालखंडों में विद्यमान वंशों, पूर्व कालखंड से लुप्त होने वाले वंशों तथा इस अध्याय के कालखंड में उभरने वाले वंशों की सूची बनाइए।

7. इस अध्याय और किसी अतिरिक्त पाठ्य-सामग्री का उपयोग करते हुए एक संक्षिप्त विवरण तैयार कीजिए जिसमें— (1) नालंदा जैसे शिक्षा-केंद्रों के महत्त्व; और (2) उनके विनाश के भारत की शिक्षा और संस्कृति पर पड़े संभावित प्रभावों की व्याख्या हो।

8. आपके अनुसार महमूद गज़नवी ने अफगानिस्तान से भारत में बार-बार आक्रमण क्यों किए जबकि मुहम्मद गोरी ने भारत में क्षेत्रीय विस्तार और दीर्घकालिक नियंत्रण स्थापित करने का लक्ष्य रखा? संक्षेप में लिखिए कि उसके उद्देश्यों ने उसके अभियानों के परिणामों को कैसे आकार दिया?

© NCERT not to be republished